धर्म और अधर्मका विवेक

रजि० नं० बी, ४४४८

हरिजनसेवक

दो आना

भाग १०　　सम्पादक : प्यारेलाल　　अंक १८

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय, कालुपुर, अहमदाबाद

अहमदाबाद रविवार, ता० ९ जून, १९४६

वार्षिक मूल्य देशमें रु० ६,
विदेशमें रु० ८; शि० १४; डॉलर ३

आज़ाद हिन्द फ़ौजवालोंकी उलझन

गांधीजीके दिल्ली रहते हुए उस दिन भंगी-बस्तीमें आज़ाद हिन्द फ़ौजके कोई ५०-६० सीनियर अफ़सर उनसे मिलने आये। आते ही उन्होंने पहले गुरुदेवके 'जनगण-मन-अधिनायक जय हे भारत-भाग्य-विधाता' गीत का हिन्दुस्तानी रूप मिलकर गाया। पहले जब ये सब क़ैद थे और इनकी तक़दीरका फ़ैसला होना बाक़ी था, तब क़ाबुली लाइन्सके कँटीले तारोंवाले अहाते में भी, गांधीजीके इनसे वहाँ मिलने जाने पर, इन्होंने यही गीत गाया था। इसके बाद गांधीजीने उनसे चन्द बातें हिन्दुस्तानीमें कहीं।

गांधीजी बोले: "कुछ दोस्तोंने अपनी कुछ उलझनें मेरे सामने रक्खी हैं, और मुझसे कहा गया है कि ऐसी ही कुछ उलझनें आपको भी सता रही हैं। अलबत्ता, यह ठीक है कि कांग्रेस अहिंसा और शान्तिके ज़रिये स्वराज्य हासिल करनेमें मानती है; मगर कांग्रेसके बाहर और उसके अन्दर भी ऐसे बहुतसे लोग मौजूद हैं, जिन्हें यह शक होने लगा है कि क्या कांग्रेसकी यह नीति या पॉलिसी अब अपना काम खतम नहीं कर चुकी है और क्या आगे पड़े हुए कामोंके लिए वह निकम्मी नहीं हो चुकी है, खासकर उस हालतमें जब कि ज़माना बदल गया है और बदलता चला जा रहा है।

"आप लोगोंने सुभाषबाबूके मातहत काम किया है और बहादुर लड़वैयोंके नाते लड़ाईके मैदानमें अपने जौहरको साबित किया है। मगर कामयाबी और नाकामी हमारे हाथकी बात नहीं। वह तो भगवान्‌के ही हाथमें है। आपसे विदा होते वक़्त नेताजीने कहा था कि हिन्दुस्तान लौटने पर आपको कांग्रेसके क़ानून मानकर चलना है, और उसकी नीतिके मुताबिक़ बरतना है। मुझसे कहा गया है कि हिन्दुस्तान को आज़ाद करना ही आप लोगोंका मक़सद या ध्येय था— जापानकी मदद करना नहीं। आप अपने असल मक़सदमें यानी अंग्रेज़ोंको हरानेमें नाकाम रहे, लेकिन आपको यह देखकर सन्तोष होना चाहिये कि मुल्क इस छोर से उस छोर तक जाग उठा है; यही नहीं, बल्कि सरकारी फ़ौजों में भी एक नई सियासी यानी राजनीतिक जागृति पैदा हो गई है, और वे लोग भी अब हिन्दुस्तानकी आज़ादी के बारेमें सोचने लगे हैं। आपने अपने बीच हिन्दुओं, मुसलमानों, पारसियों, ईसाइयों, एंग्लोइंडियनों और सिक्खोंके दरमियान पूरी-पूरी एकता क़ायमकी है। यह कोई मामूली कामयाबी नहीं। मगर हिन्दुस्तानके बाहर आज़ादीकी हवामें जो कुछ आप कर सके, उसको यहाँ हिन्दुस्तानकी इस हवामें ज़िन्दा रखना अब आपका ज़िम्मा है। यह आपकी सच्ची कसौटी होगी।

"अगर आप अहिंसाकी भावनाको अपना लेंगे, उसे हज़म कर लेंगे, तो यहाँ भी आप दिलसे आज़ाद रह सकेंगे। मसलन्, दुनियाकी कोई ताक़त या हुकूमत उन लोगोंको सलाम करनेके लिए मजबूर नहीं कर सकती, जिन्होंने दिलकी आज़ादीको हासिल कर लिया है। अगर कोई हुकूमत उन्हें मार डालनेकी धमकी दे, तो वे अपनी गरदन आगे बढ़ा देंगे, मगर सलाम तो हरगिज़ न करेंगे। इस तरह खामखा किसीको क़त्ल करनेके खिलाफ़ तो सिपाहीके दिलमें भी बग़ावत खड़ी हो सकती है। इसलिए मैं कहता हूँ कि आप आज़ाद आदमियोंकी तरह ही ज़िंदा रहें, और ज़रूरत पड़ने पर उसी तरह मरें भी। आप .गुलाम तो हरगिज़ न रहें। अगर आप सब दिलसे आज़ाद हो जायँ, तो सारा हिन्दुस्तान आज़ाद हो जायगा। वे आपको क़ैद कर सकते हैं। आप चाहें, .खुशी-.खुशी जेल चले जायँ, या उनसे साफ़-साफ़ कह दें कि वे आपकी लाशको ही जेलमें डाल सकते हैं। अहिंसक सिपाहीके लिए ये दोनों रास्ते खुले हैं, और इनके लिए ऊँचे-से-ऊँचे दरजेकी बहादुरी ज़रूरी है। हिन्दुस्तानके ४० करोड़ लोगोंमें नई जान डालनेका महान् काम हमारे सामने पड़ा है। हमें इन चालीसों करोड़के दिलसे डरको मार भगाना है। जिस दिन वे सब तरहके डरसे बरी हो जायँगे, उसी दिन .गुलामीकी हमारी बेड़ियाँ भी कट जायँगी, और मुल्क सारा आज़ाद हो जायगा।

"बरसों पहले ननकानासाहबमें मैंने कहा था: 'सिक्खोंने सिपाहीके नाते अपनी बहादुरी साबित कर दिखाई है। लेकिन गुरु गोविन्दसिंहके आदर्शकी पूरी सार्थकता तो तभी होगी जब वे अपनी इन कृपाणोंके बदले आत्माकी यानी अहिंसाकी कृपाण या तलवार बाँधने लगेंगे।' जब तक आप अपनी तलवार अपने हाथमें रखना चाहते हैं, तब तक आप पूरे-पूरे निडर या बेख़ौफ़ नहीं बने हैं। जब आप अहिंसाकी तलवार बाँधे होंगे, तो दुनियाकी कोई ताक़त आपको दबा नहीं सकेगी। अहिंसा जीतनेवालोंकी तरह ही हारनेवालोंको भी ऊपर उठाती है। नेताजीने आपके अन्दर एक नई आग नया जज़्बा, पैदा कर दिया है। उसे अब आप अहिंसाके ज़रिये ही ज़िंदा रख सकते हैं।"

इस तरह फ़ौजी हिम्मतकी शकलमें अहिंसा महत्त्वको, उसकी अहमियतको, समझानेके बाद गांधीजीने उन्हें बताया कि एक बा-इज़्ज़त और नमूनेदार नागरिक बननेके लिए एक सत्याग्रहीमें किस ऊँचे दरजेकी हिम्मत ज़रूरी होती है। उन्होंने कहा: "सबसे बड़ी बात तो यह है कि आपको कभी भीख न माँगनी चाहिये और न किसीसे दान लेकर अपनी गुज़र करनी चाहिये। चूँकि हिन्दुस्तानके लिए आपने अपनी जान जोखिममें डाली है और इम्फालके मैदान पर आप उसकी आज़ादीके लिए लड़े हैं, इसलिए इस सबके बदलेमें आपको मुल्कसे अपने लिए बहुत लाड़-दुलारकी या रिआयत-सहूलियतकी उम्मीद न रखनी चाहिये। अगर आप ऐसा करेंगे, तो अपनी क़ीमत खो बैठेंगे — निकम्मे बन जायँगे। जो नमकीन न रहा वह नमक कैसा? वह तो मिट्टी हो गया। आपको अपने पसीनेकी रोटी खाना पसन्द होना चाहिये और भीख माँगने या दान लेनेसे क़तई परहेज़ करना चाहिये। थोड़ेमें मुझे यही कहना है कि अब तक हथियार चलानेमें आपने जो हिम्मत और बहादुरी दिखाई है, वैसी ही हिम्मत और बहादुरी अब आपको अहिंसाके मैदानमें भी दिखानी है।

"अगर ज़मीनकी ज़रूरत है, तो वह आपको मिलेगी। आप उसे साफ़ और समतल करके उसको नमूनेके खेतोंमें बदल डालिये। सदियों पुरानी जो काहिली या सुस्ती हमारे लाखों-करोड़ोंको घेरे हुए है, उसे आपको मिटाना है, उस पर फ़तह पानी है। यह आप

www.vinoba.in

तभी कर सकेंगे, जब ख़ुद दिन-रात काम-धन्धेमें डूबे रहकर कड़ी मेहनतकी ज़िन्दगी बितायेंगे। आपको भंगी या मेहतरकी तरह झाड़ू और डोल सँभालने होंगे, और बड़ी होशियारी व तनदेही से इन कामोंमें कमाल हासिल करना होगा। झाड़ू लगाने या पाखाना साफ़ करनेका काम आपके नज़दीक गन्दा या हलका काम हरगिज़ न होगा। इन कामोंमें कमाल हासिल करना विक्टोरिया क्रॉस हासिल करनेसे कहीं बढ़कर है।"

इसके बाद सवाल-जवाब शुरू हुए :

स०—जिसने सारी ज़िन्दगी लड़नेमें बिताई है, वह कामयाबी के साथ अहिंसाको कैसे अपना सकता है? क्या ये दोनों आपसमें बेमेल नहीं?

ज०—मैं इसे नहीं मानता। बादशाहखान पठान हैं। मगर आज वे अहिंसाके सिपाही बन गये हैं। टॉल्स्टॉयने भी फ़ौजमें नौकरी की थी। फिर भी युरोप में वह अहिंसाके सबसे बड़े प्रचारक रहे। अहिंसाकी ताक़तको हम अभी पूरी तरह पहचान नहीं पाये हैं। अगर सन् '४२में सरकारने मुझे गिरफ़्तार न कर लिया होता, तो मैं दिखा देता कि अहिंसा के तरीक़ेसे जापान के साथ कैसे लड़ा जा सकता है।

स०—अपने बचावके लिए तलवार चलाना तो अहिंसा ही है न?

ज०—यों तो वेवल, ऑकिनलेक और हिटलर भी बिला वजह तलवार नहीं चलाते। फिर भी मेरे नज़दीक वह अहिंसा नहीं। उसके बचावमें कुछ भी क्यों न कहा जाय, आखिर वह हिंसा ही है।

स०—आप अहिंसाको अपनाकर दुनियाके साथ नहीं चल सकते। आपको दो में से किसी एकको पसन्द कर लेना होगा।

ज०—मैं इसे नहीं मानता। सुधारकको दुनियाकी चाल से नहीं चलना है, उसे तो दुनियाके सामने होकर चलना है, फिर चाहे ऐसा करते हुए उसे मरना ही क्यों न पड़े। लोग तालियाँ बजाकर आपका स्वागत करते हैं, इससे आपको भुलावेमें न पड़ना चाहिये। मुल्कको जो ख़ास पैग़ाम आपकी ओर से मिलना है, वह तलवार चलानेका नहीं, बल्कि लोगोंको मर्द और निडर बनानेका है—तलवार के डरको मिटानेका है।

स०—अगर सुभाषबाबू जीतकर आये होते तो आप क्या करते?

ज०—मैं उनसे कहता कि वे आपके तमाम हथियार मेरे सामने जमा करवा दें।

मसूरी, ३०-५-'४६
('हरिजन'से) प्यारेलाल

उरुळीकांचन

कांचन गाँवसे मेरे साथी मुझे ख़बर देते हैं कि वहाँ दूर-दूरसे लोग इलाजके लिए जा रहे हैं। मैंने 'हरिजन-सेवक'में लिखा तो है कि अबतक वहाँ जगहका भी ठिकाना नहीं है। अब ख़बर आई है कि थोड़ी ज़मीन मिल गई है, लेकिन उस पर मकान वग़ैरा बनाना अभी बाक़ी है; और, वहाँ ऐसा कोई मकान भी नहीं है, जिसमें मरीज़ोंको रक्खा जा सके। बाहरके मरीज़ोंको लेनेका प्रबन्ध तो वहाँ हो ही नहीं सकेगा। यह देहातको शहर बनानेका साहस नहीं। ध्येय तो यह है कि हर देहातमें जैसे पाठशाला होनी चाहिये, वैसे ही वहाँ एक नैसर्गिक उपचार-गृह भी बने। वह देहातकी शोभा बनेगा। इसके पढ़नेवाले याद रक्खें कि उरुळीकांचन गाँवमें रहनेवाले मेरे साथी पत्र-व्यवहारसे भी मरीज़ोंको सलाह देनेमें, उनकी रहनुमाई करनेमें, असमर्थ हैं। दूरवाले समझें कि वे अपने लिए क़ुदरती इलाज ख़ुद ही कर सकते हैं। राम-नाम कौन नहीं ले सकता? यानी कटि-स्नान कौन नहीं कर सकता?

मसूरी, २-६-'४६ मो० क० गांधी

सवालनामा

स०—मेहनत करने पर भी पेट भर अनाज न मिले, तो क्या किया जाय?

ज०—जो मेहनत करता है, उसे पेट भर अनाज मिलना ही चाहिये। यह हमेशाका क़ानून है। लोगोंको फ़ायदा पहुँचानेवाली सब मेहनतका एक ही दाम होना चाहिये। जब तक यह नहीं हो पाता, मेहनत करनेवालेको कम-से-कम अपना और अपने कुटुंबका पेट भरनेके लिए अनाज और तन ढँकनेके लिए कपड़ा तो मिलना ही चाहिये। जहाँ इतना भी नहीं हो सकता, वहाँ राजका इन्तज़ाम होते हुए भी अराजकता चलती है। अराजकता मिटानेके लिए लोग क्या करें? उन्हें शान्तिसे अराजकताका सामना करना चाहिये। लोग अशान्त होकर दुकानें लूटने लगें या मारामारी करने लगें, उससे काम नहीं बन सकता। ऐसा करनेसे लोग बे-मौत मरते हैं; और अगर डरके मारे सरकार झुक भी जाय, और लोगोंकी माँग पूरी भी कर दे, तो भी उससे न लोगोंको फ़ायदा पहुँचता है, न सरकारको। अराजकता तो मिटती ही नहीं। और आखिर जहाँ थे, वहीं रह जाते हैं। दुनिया पर एक सरसरी नज़र डालनेसे भी यह चीज़ सब जगह साफ़-साफ़ दिखाई देगी।

अनाज पड़ा हो और फिर भी वह भूखोंको न मिले, तो वे सत्याग्रह कर सकते हैं। ख़ुद होकर वे उस पर क़ब्ज़ा न करें। डाका न डालें। भीख माँगने या डाका डालनेके बदले मरने तक उपवास करें, और इस तरह अपने लिए व दूसरोंके लिए न्याय हासिल करें। इतनी धीरज ही न हो तो बात अलग है; मगर हो, तो यहाँ बताया हुआ रास्ता ज़रूर सफल होगा।

मसूरी, २९-५-'४६
('हरिजनबन्धु'से)

क्या किसी भी हालतमें झूठ बोलना मुनासिब है?

स०—मशहूर अंग्रेज़ लेखक मि० बरट्रैण्ड रसेलके नीचे लिखे बयानके बारेमें आपकी क्या राय है? "एक दफ़ा देहातकी तरफ़ घूमते हुए मैंने देखा कि एक थकी हुई लोमड़ी लस्त-पस्त होनेकी हालतमें भी ज़बरदस्ती दौड़ी चली जा रही थी। इसके कुछ ही मिनट बाद मुझे शिकारियोंकी एक टोली दिखाई पड़ गई। उन्होंने मुझसे पूछा: 'क्या आपने लोमड़ी देखी है?' और मैंने कहा: 'हाँ, देखी है।' उन्होंने फिर पूछा: 'किधर गई है?' और मैं उनसे झूठ बोल गया। मैं नहीं समझता कि उनसे सच बात कहकर मैं ज़्यादा भला आदमी बन गया होता।"

ज०—मि० बरट्रैण्ड रसेल एक बड़े लेखक और फिलॉसफर हैं। उनकी पूरी-पूरी इज़्ज़त करते हुए भी मुझे ऊपर दी गई उनकी रायसे अपनी नाइत्तिफ़ाक़ी ज़ाहिर करनी चाहिये। शुरूमें ही उन्होंने यह कहकर ग़लती की कि उनने लोमड़ी देखी है। पहले सवालका जवाब देना उनके लिए लाज़िमी नहीं था। अगर वह शिकारियोंको जान-बूझकर ग़लत रास्ते चढ़ाना नहीं चाहते थे, तो वे दूसरे सवालका जवाब देनेसे भी इनकार कर सकते थे। मैं हमेशासे यह मानता और कहता आया हूँ कि हमें पूछे जानेवाले सब सवालोंका जवाब देना हमेशा ही लाज़िमी नहीं होता। सच बात कहनेमें अपवादकी कोई गुंजाइश नहीं।

मानपत्र और फूलोंके हार

स०—एक भाई शिकायत करते हैं: "बहुतसे सूबोंमें कांग्रेसी वज़ारतें हो गई हैं, और आम रिआयाको इस हक़ीक़त पर नाज़ है। इसलिए जब कोई मंत्री या वज़ीर किसी जगह जाते हैं, तो वहाँकी मुक़ामी कमेटियाँ या दूसरी संस्थायें उन्हें क़ीमती मानपत्र या एड्रेस देकर उनके तईं अपना आदर प्रकट करती हैं। क़रीब-क़रीब सभी मामलोंमें इस तरह दी जानेवाली चीज़ें वज़ीरकी अपनी मिल्कियत बन जाती हैं। मेरी रायमें यह तरीक़ा ठीक नहीं। या तो इस तरह मानपत्र

www.vinoba.in

लेनेका यह सिलसिला बन्द किया जाना चाहिये, या इस तरह दी गई चीज़ें मुक़ामी कांग्रेस कमेटीको मिलनी चाहिये। वज़ीरों या कांग्रेसके लीडरोंको फूलोंके हार वग़ैरा पहनानेके बारेमें भी कोई तयशुदा पॉलिसी होनी चाहिये। मैंने कई जगह देखा है कि मंत्रियोंका स्वागत करते समय उनको ऐसे हार पहनाये गये हैं, जिनकी क़ीमत ३००) या ४००) से कम नहीं। यह पैसेकी निरी बरबादी है।"

ज०—यह एक वाजिब शिकायत है। आम रिआयाकी ख़िदमत करनेवाले किसी भी सेवकको अपने कामके लिए न तो क़ीमती मानपत्र लेने चाहिये और न बेशक़ीमती फूलोंके हार वग़ैरा। बहुत ही बुरी चीज़ नहीं, तो भी यह एक अफ़सोसनाक चीज़ तो बन ही गई है। इसके बचावमें अक्सर यह दलील दी जाती है कि मानपत्रकी क़ीमती चौखटों और फूलोंके बेशक़ीमती हारों व गुलदस्तोंकी बदौलत इन चीज़ोंको बनानेवाले कारीगरोंको पैसा मिलता है। लेकिन ये कारीगर तो वज़ीरों और उनके-जैसे दूसरोंकी मददके बिना भी अच्छी तरह अपना काम चला सकते हैं। वज़ीर वग़ैरा अपने मौज-शौक़के लिए दौरा नहीं करते। उनके दौरे कामके सिलसिलेमें होते हैं, और उनके पीछे अक्सर यह ख़याल रहा है कि वे लोगोंसे रूबरू उनकी बातें सुन सकें। उनको दिये जानेवाले मानपत्रोंमें उनके गुणोंकी तारीफ़ करना ज़रूरी नहीं, क्योंकि गुण तो ख़ुद ही अपने इनाम हैं। मानपत्रोंमें तो मुक़ामी ज़रूरतों और शिकायतोंका, अगर वैसी कोई शिकायतें हों, ज़िक्र किया जाना चाहिये। वज़ीरों और उनके सेक्रेटरियोंके सामने बड़े कड़े-कड़े काम पड़े हैं। लोगोंकी ख़ुशामदभरी तारीफ़ोंसे उनके काममें मदद पहुँचनेके बदले रुकावटें पैदा होंगी।

मसूरी, ३१-५-'४६

('हरिजन'से) मोहनदास करमचंद गांधी

आम रिहाइयाँ

सूबोंमें ज़िम्मेदार वज़ारतें (मंत्रिमंडल) काम करने लगी हैं। सहज ही इसका यह मतलब होता है कि सियासी या राजनीतिक क़ैदियोंकी आम रिहाइयाँ हों। इनमें हत्या करने, आग लगाने और डाका वग़ैरा डालनेके सिलसिलेमें सज़ा पाये हुए क़ैदी भी शामिल हैं। लोग मुझसे पूछते हैं कि इस तरह रिहाई पाये हुओंको जनता किस हदतक बहादुर और शहीद माने और उनका जय-जयकार करे।

इस तरहके जुर्मों में सज़ा पाये हुओंको अलग-अलग कारणोंसे रिहा करना एक बात है। लेकिन इन कामोंको हर तरहकी इज़्ज़त पानेवाले बहादुरोंके कामके साथ मिलाना और उनकी वैसी ही तारीफ़ करना बिलकुल दूसरी बात है। मुझे इसमें कोई शक नहीं कि ऐसा करना बेसमझी है और ग़लत है। अगर किसी पब्लिक कामके लिए मुझे पैसेकी ज़रूरत है और मैं उसे डाका डालकर हासिल करता हूँ, तो महज़ इसलिए कि डाका पब्लिक कामके लिए डाला गया था, मैं डाकू होनेसे बच नहीं सकता। देशभक्तिके ऊँचे नाम पर किये गये ऐसे हरएक जुर्मकी बिना सोचे-समझे की जानेवाली यह तारीफ़ एक ऐसा क़ातिल हथियार है, जो अपनी दूनी ताक़तसे लौटकर क़ौम पर आ गिरेगा और मुल्कको उसकी गहरी क़ीमत चुकानी पड़ जायगी। वैसे आज़ादीमें गुनाह करनेकी छूट भी शामिल है, लेकिन अगर उसके साथ अपना अपनाया हुआ कड़ा संयम न रहा, तो वह आसानीसे शाप बन सकती है। आम लोगोंकी ओरसे किया जानेवाला यह स्वागत-सत्कार लोगोंको ग़लत तालीम देगा और उस आज़ादीको नुक़सान पहुँचानेवाली तैयारी साबित होगा, जो हममेंसे कइयोंकी उम्मीदसे कहीं पहले आ रही है।

मसूरी, ३१-५-'४६

('हरिजन'से) मोहनदास करमचंद गांधी

कुछ और सुझाव

यह एक अच्छी निशानी है कि अनाज की कमी पर बहुत से लोग सोच-विचार कर रहे हैं। हर तरफ़ से इस कमीको पूरा करने के लिए सुझाव आते रहते हैं। एक भाईने, जो अपने विषय (मज़मून) को अच्छी तरह जानते हैं, नीचे लिखे सुझाव भेजे हैं:

(१) जब अनाज बहुत कम मिलने लगे, तो मांस खानेवालों को दूसरों के बराबर अनाज देनेकी क्या ज़रूरत? जितनी ख़ूराक वे मांस से हासिल कर सकें, अनाज की उनकी रसद उतनी कम कर दी जाय, तो काफ़ी अनाज बच सकता है।

(२) अनाजकी रसद कम कर दी गई है। मेरा ख़याल है कि इससे बहुत से मेहनत करनेवालों का पेट नहीं भरता। बहुत से तो इस कमी को इस तरह पूरा करते हैं कि गेहूँमें मूँग, चना और जौ मिलाकर इनका आटा बना लेते हैं। लेकिन इन तीनों चीज़ों की क़ीमत गेहूँसे ज्यादा है। इसलिए बहुत से उन्हें ख़रीद नहीं सकते। इससे यह नतीजा निकलता है कि मांस खानेवालों के लिए जितना अनाज कम किया जाय, उतनी ही पौष्टिक (क़ूवतबख्श) मांसकी ख़ूराक कम किये अनाजकी क़ीमत में मिलनी चाहिये। मैंने इस तजवीज़का खर्च निकाला है। अगले कुछ महीनों में १५ करोड़ रुपये से ज्यादा खर्च नहीं आयेगा। आदमियों को बचानेके लिए तो कोई भी क़ीमत ज्यादा नहीं हो सकती। कहा जाता है कि हिन्दुस्तान में अनाजकी कमी की वजह से शायद १से १॥ करोड़ तक आदमी मर जायँगे।

(३) मुझे जीव-हत्या बहुत बुरी लगती है। लेकिन अगर आदमी या जानवर में से सिर्फ़ एक को बचाया जा सके, तो मेरे ख़यालमें आदमी को बचाना चाहिये। हिरन, खरगोश, सुअर और कबूतर फ़सलोंको काफ़ी नुकसान पहुँचाते हैं। अगर इनके शिकारका ठीक बंदोबस्त किया जाय, तो कुछ इलाक़ों को, ख़ासकर बड़े शहरों को, मांस लगातार मिल सकता है। यह बन्दोबस्त मुश्किल तो है, पर नामुमकिन नहीं। अगर ये जानवर इतने बड़े पैमाने पर मारे जायें, तो लगे हाथों यह भी फ़ायदा होगा कि जो फ़सलें ये जानवर तबाह करते हैं, वे बच जायँगी।

(४) ऐसे बहुत कम लोग हैं जो इस बातको पसन्द करें कि ख़ूराक बचाई जाय और रसद बाँटनेके चालू तरीक़े के मुताबिक़ कालवाले इलाक़ों में भेजी जाय। काला बाज़ार और बेईमानी इतनी चलती है और लोगों को ऐसा लगता है कि जो कुछ वे बचायेंगे, सो काले बाज़ार में पहुँच जायगा। अगर बचाया हुआ अनाज इकट्ठा किया जाय, और विश्वास दिलाया जाय कि वह कालवाले इलाक़े में जरूर पहुँच जायेगा, तो लोगों के दिलों पर इसका बहुत अच्छा असर होगा। इसके लिए बन्दोबस्त तो करना पड़ेगा, पर मुझे ऐसा लगता है कि काफ़ी अनाज इकट्ठा हो जायगा।

पहला सुझाव ऐसा है कि हुकूमत उस पर चले या न चले, ईमानदार मांसखानेवाले उस पर चल सकते हैं। अगर वे आज अनाजका अपना पूरा हिस्सा ले रहे हैं, तो उसमेंसे कुछ आसानीके साथ ज्यादा ज़रूरतमन्द लोगोंको दे सकते हैं। ऐसे मौक़ों पर आपसके सहयोग (तआवुन) से ज़रूरतवालोंको जल्दी-से-जल्दी मदद पहुँच सकती है।

दूसरा सुझाव पहले से निकलता है।

तीसरे सुझाव के बारेमें अलग-अलग राय होगी। हिन्दुस्तान एक ऐसा मुल्क है जहाँ बहुतसे लोग हर क़िस्मकी जानको पवित्र (मुतबर्रिक़) मानते हैं, और जो ऐसा नहीं भी मानते, उनकी भी यह आदत बन गई है कि वे जीव-हत्या करना पसन्द नहीं करते।

www.vinoba.in

ऐसे देशमें शायद मांस खानेवालों के लिए भी इस सुझाव पर चलना मुश्किल होगा। सब जानते हैं कि मैं हर क़िस्मके जीवको पवित्र मानता हूँ। फिर भी मैं बड़ी आसानीसे इस बातकी सिफ़ारिश कर सकता हूँ कि जो लोग मांस खाते हैं, वे लेखक की सुझाई हुई तदबीर पर चलें। 'हरिजनबन्धु'में मैं एक ऐसी दलील पर चर्चा करने की आशा रखता हूँ, जो खतरनाक जानवरोंको भी मारने के खिलाफ़ है। गो इसका .खूराककी बात के साथ कोई ताल्लुक़ नहीं।

चौथा सुझाव अच्छा है। लेकिन उससे कोई खास नतीजा निकलनेवाला नहीं, क्योंकि सरकारमें हर जगह बेईमानी, नालायक़ी और ग़ैरज़िम्मेदारी छाई हुई है। यह मुश्किल तब तक दूर नहीं हो सकती, जब तक हमारी अपनी सरकार न हो। उसे जनता को हर बातका जवाब देना पड़ेगा और लोग उस पर भरोसा कर सकेंगे। बहुत दिनोंसे ऐसी हुकूमतका इन्तज़ार है। क्या वह कभी आयेगी भी?

मसूरी, २९-५-'४६

('हरिजन'से) मोहनदास करमचंद गांधी

हरिजनसेवक

९ जून १९४६

धर्म और अधर्मका विवेक

एक भाई लिखते हैं:

"५ मईके 'हरिजनबन्धु'में आपने लिखा है कि आपकी अहिंसामें भयानक प्राणियोंको, मसलन्, शेर, भेड़िया, साँप, बिच्छू वग़ैराको मार डालनेकी गुंजाइश है।

"आप कुत्तों वग़ैराको खाना नहीं देते। गुजराती समाजके अलावा और भी बहुतसे लोग हैं, जो जानवरोंको खिलाना पुण्य समझते हैं। आजकल जब कि .खूराककी इतनी तंगी है, ऐसा खयाल नामुनासिब हो सकता है। मगर इतनी बात तो है कि ये जानवर (कुत्ते वग़ैरा) आदमीकी काफ़ी सेवा करते हैं। इन्हें खिलाकर इनसे काम लिया जा सकता है।

"आपने डरबनसे स्व० श्री रायचन्दभाईको २७ सवाल पूछे थे। उनमें एक सवाल यह भी था कि जब साँप काटने आये, तो क्या किया जाय? उन्होंने जवाब दिया था कि आत्मार्थी साँपको नहीं मारेगा। साँप काटे, तो उसे काटने देगा। मगर अबकी तो आप दूसरी ही बात कह रहे हैं। ऐसा क्यों?"

इस बारेमें मैं काफ़ी लिख चुका हूँ। उन दिनों सवाल पागल कुत्तोंको मारनेका था। काफ़ी चर्चा हुई थी। मगर मालूम होता है कि वह सब भूल गई है।

मैं जिस अहिंसाका पुजारी हूँ, वह निरी जीव-दया ही नहीं है। जैनधर्ममें जीव-दया पर .खूब वज़न दिया गया है। वह समझमें आता है, मगर उसका यह मतलब हरगिज़ नहीं कि इनसानको छोड़ कर हैवानों पर दया की जाय। मैं मानता हूँ कि जहाँ जानवरों पर दया करनेकी बात लिखी है, वहाँ मनुष्य पर दया करनेकी बात तो मान ही ली गई है। ऐसा करनेमें हद छूट गई है, और अमलमें तो जीव-दयाने टेढ़ा रूप ही लिया है। जीव-दयाके नाम पर अनर्थ हो रहा है। बहुतसे लोग चींटियोंको आटा डालकर सन्तोष मानते हैं। ऐसा मालूम होता है, मानो आजकलकी जीव-दयामें जान ही नहीं रही। धर्मके नाम पर अधर्म चल रहा है, पाखण्ड फैल रहा है।

अहिंसा सबसे ऊँचा धर्म है। वह बहादुरोंका धर्म है, कायरोंका कभी नहीं। दूसरे मारें, हिंसा करें, और हम उससे फ़ायदा उठायें, और मानें कि हमने धर्मका पालन किया है, तो यह अपने-आपको धोखा देना नहीं हुआ, तो और क्या हुआ?

जिस गाँवमें रोज़ बाघ आता है, वहाँ नामका अहिंसावादी नहीं रहेगा। वह तो वहाँसे भाग जायगा और जब कोई दूसरा आदमी उस बाघको मार डालेगा, तब वापस आकर अपने घर-बार पर क़ब्ज़ा करेगा। यह अहिंसा नहीं है। यह तो डरपोककी हिंसा है। बाघको मारनेवालेने कुछ बहादुरी तो दिखाई। मगर जो दूसरेकी हिंसासे लाभ उठाता है, वह कायर है। वह कभी अहिंसाको पहचान नहीं सकता।

देहधारीको कुछ-न-कुछ हिंसा तो करनी ही पड़ती है। असल धर्म एक होते हुए भी उसके बारेमें हरएककी समझ अलग-अलग होती है। इसलिए सब अपनी शक्ति और समझके मुताबिक़ उस पर चलते हैं। एकका धर्म दूसरेके लिए अधर्म हो सकता है। मांस खाना मेरे लिए अधर्म है, मगर जो मांस पर ही पला है, जिसने मांस खानेमें कभी बुराई नहीं मानी, वह मुझे देखकर मांस छोड़ दे, तो उसके लिए वह अधर्म होगा।

मुझे खेती करनी हो, जंगलमें रहना हो, तो खेतीके लिए लाज़िमी (अनिवार्य) हिंसा मुझको करनी ही पड़ेगी। बन्दरों, परिन्दों और ऐसे जन्तुओंको, जो फ़सल खा जाते हैं, .खुद मारना होगा, या कोई ऐसा आदमी रखना होगा जो उन्हें मारे। दोनों एक ही चीज़ हैं। जब अकाल सामने हो, तब अहिंसाके नाम पर फ़सलको उजड़ने देना मैं तो पाप ही समझता हूँ। पाप और पुण्य स्वतंत्र चीज़ें नहीं हैं। एक ही चीज़ एक समय पाप और दूसरे समय पुण्य हो सकती है।

आदमीको शास्त्ररूपी कुएँमें डूब नहीं जाना है, बल्कि गोताखोर बनकर शास्त्ररूपी समुद्रमेंसे मोती निकालने हैं।

इसलिए क़दम-क़दम पर आदमीको हिंसा और अहिंसाका विवेक (तमीज़) करना होता है। इसमें न शर्मकी गुंजाइश है, न डरकी।

'हरिनो मारग छे शूरानो, नहिं कायरनुं काम जोने'

(हरिका रास्ता बहादुरोंका है, डरपोकोंका उसमें कोई काम नहीं।)

आखिर श्री रायचन्द भाईने तो यह लिखा था कि अगर मुझमें शक्ति हो और मैं आत्माको पहचानना चाहता होऊँ, तो साँपके काटने आने पर मुझे चाहिये कि मैं उसे काटने दूँ। मैंने तो उनका खत मिलनेसे पहले या बादमें आज तक कभी साँपको मारा ही नहीं। इसे मैं अपनी बहादुरी नहीं समझता। मेरा आदर्श तो यह है कि मैं साँप और बिच्छूसे बेधड़क खेल सकूँ। मगर आज तो यह मेरा एक मनोरथ ही है। मैं नहीं जानता कि यह मनोरथ कभी फलेगा या नहीं, और अगर फला तो कब? मैंने अपने आदमियोंको सब जगह साँप और बिच्छू मारने दिये हैं। मैं चाहता तो उन्हें रोक सकता था। मगर रोकता कैसे? इन जानवरोंको अपने हाथमें पकड़कर दूसरोंको निडर बनानेकी हिम्मत मुझमें नहीं थी। न होनेकी मुझे शर्म थी। मगर वह मेरे या उनके किस कामकी? राम-नामकी कृपा होगी, तो मुझे आशा करनी चाहिये, कि किसी रोज़ ऐसा करनेकी भी हिम्मत आ जायगी। मगर तब तक मैं तो ऊपर बताया हुआ धर्म ही जानता हूँ। धर्म भी तजरबेसे सीखा जाता है, कोरी पंडिताईसे नहीं।

मसूरी, २९-५-'४६

('हरिजनबन्धु'से) मोहनदास करमचंद गांधी

www.vinoba.in

खादीके बारेमें संवाद

एक खादी-सेवक लिखते हैं :

"एक खादी-भण्डारके संचालक और ग्राहकोंके बीच हुई हालकी एक बातचीत नीचे देता हूँ। कृपया लिखें कि क्या इन ग्राहकोंको खादी बेची जा सकती है?

सवाल-जवाब यों हैं :

स० — क्या यह सूत आपने .खुद काता है?

ज० — नहीं, मैं १० रुपयेकी ८ गुण्डी खरीदकर लाया हूँ।

स० — दूसरेसे पूछा : क्या आप यह सारा सूत कात लेते हैं?

ज० — नहीं, इसे मेरी लड़कीने काता है। हम तो बारह आनेकी एक गुण्डीके हिसाबसे बेचते भी हैं।

स० — तीसरेसे कहा : यदि आपके पास सूत नहीं है, तो आपको खादी नहीं मिलेगी।

ज० — कोई परवाह नहीं। जब तक मुझे सूत नहीं मिलता, मैं अप्रमाणित खादी ही पहनूँगा।

स० — चौथेसे पूछा गया : आप खादी क्यों खरीदते हैं?

ज० — क्योंकि वह आसानीसे मिल जाती है।

स० — पाँचवेंसे बात हुई : आप तो खादीधारी नहीं; फिर इस खादीका क्या होगा?

ज० — आजकल कुछ खादी पहनना भी फ़ैशनमें शरीक है।

स० — छठेसे कहा : आप तो कातते ही नहीं, फिर यह सूत कहाँ से?

ज० — मेरे एक भले दोस्त हमेशा सूत देते रहते हैं।

स० — सातवेंसे पूछा : आप हमेशा रेशमी या ऊनी खादी ही क्यों पहनते हैं?

ज० — क्योंकि इसके लिए सूत नहीं देना पड़ता।

स० — आठवेंने बहुत-सी खादी खरीदी। उनसे पूछा गया : इतनी सारी खादी खरीदकर क्या करेंगे?

ज० — इकट्ठा करके रक्खूँगा। दो-तीन साल चलेगी। फिर मिले या न मिले।"

ये सब सवाल-जवाब बहुत सूचक हैं। अगर खादीकी नई नीति सही है और सब ग्राहक इस प्रकारके हैं, तो वे खादीको कांग्रेसके विधानसे निकाल देनेकी आवश्यकता सिद्ध करते हैं। याद रहे कि इस सवाल-जवाबमें खादीके आठ ग्राहक आ जाते हैं। इनमेंसे एकके लिए भी चरखा-संघके खादी-भण्डारकी आवश्यकता सिद्ध नहीं होती। चरखा-संघकी हस्ती ही ग़रीबोंके लिए है। जो खादी पहनते हैं, वे या तो ग़रीबोंके लिए पहनते हैं या स्वराज्यके लिए। इन आठ महाशयोंको न स्वराज्यकी पड़ी है, न ग़रीबोंकी। खादीकी जड़में जो कल्पना रक्खी गई है, यदि उसे साबित करके दिखाना है, तो चरखा-संघवालोंको अपनी नीति पर इस हद तक क़ायम रहना पड़ेगा कि वे खादी बेचनेके भण्डारोंको बन्द करनेसे भी न डरें। जो ग़लती हमने की है, उसके लिए सब सहनेकी तैयारी हममें होनी चाहिये। इन सवाल-जवाबोंका एक सार यह भी है कि खादी-भण्डारोंके संचालक जाग्रत रहें। वे खादी-शास्त्रका भलीभाँति पठन करें और सब ग्राहकोंको विनय और धीरजसे खादीका रहस्य समझा दें। इसमें जो थोड़ा समय जायगा, उसकी परवाह न करें। अगर हमें खादीकी शक्तिमें विश्वास है, तो मुझे कोई शक नहीं कि हमारे दृढ़ रहनेसे सब लोग उसे समझ जायँगे। अगर हममें ही विश्वास नहीं है, तो हमारा दावा अपने-आप खतम हो जायगा।

मैंने यह मान लिया है कि संवाद जैसा हुआ है, वैसा ही खादी-सेवकने दिया है।

मसूरी, १-६-'४६ **मोहनदास करमचंद गांधी**

विश्वास-चिकित्सा (इलाजे-बिल एतक़ाद)* और राम-नाम

एक दोस्त शिकवा करते हुए लिखते हैं :

"मैंने १७-३-'४६ के 'हरिजन'में आपका लेख 'जब जागे तभी सवेरा' पढ़ा है। क्या आपका क़ुदरती इलाज और विश्वासी चिकित्सा कुछ मिलती-जुलती चीज़ें हैं? बेशक मरीज़को इलाजमें श्रद्धा (एतक़ाद) तो होनी ही चाहिये, लेकिन कई ऐसे इलाज हैं, जो सिर्फ़ विश्वाससे ही रोगीको अच्छा कर देते हैं; जैसे, माता (चेचक), पेटका दर्द, वग़ैरा बीमारियोंके। शायद आप जानते हों, माताका, खासकर दक्षिण प्रान्तोंमें,[1] कोई इलाज नहीं किया जाता। इसे सिर्फ़ ईश्वरकी माया मान लिया जाता है। हम मरिअम्मा देवीकी पूजा करते हैं। बहुतसे रोगी अच्छे हो जाते हैं। यह चीज़ एक करामात-सी लगती है। जहाँ तक पेट-दर्दकी बात है, बहुत-से लोग तिरुपतिमें देवीकी मिन्नतें मानते हैं। अच्छे होने पर उसकी मूर्तिके हाथ-पाँव धोते हैं, और दूसरी मानी हुई मिन्नतोंको पूरा करते हैं। मेरी ही माँकी मिसाल लीजिये। उनको पेटमें दर्द रहता था। पर तिरुपति हो आनेके बाद उनकी वह तकलीफ़ दूर हो गई।

"कृपा करके इस बात पर रोशनी डालिये और यह भी कहिये कि क़ुदरती इलाज पर भी लोग ऐसा ही विश्वास क्यों न रक्खें? इससे डॉक्टरोंका बार-बारका खर्च बच जायगा, क्योंकि, जैसा कि चॉसर कहता है, डॉक्टरका तो काम ही है कि वह दवाई बेचनेवालेसे मिलकर बीमारको हमेशा बीमार बनाये रक्खे।"

जो मिसालें ऊपर दी गई हैं, वे न तो क़ुदरती इलाजकी ही हैं, और न ही 'राम-नाम'की, जिसको मैंने इसमें शामिल किया है। पर उनसे यह पता ज़रूर चलता है कि क़ुदरत बहुतसे रोगियोंको बिना किसी इलाजके भी अच्छा कर देती है। मिसालें यह भी दिखाती हैं कि हिन्दुस्तानमें वहम हमारी ज़िन्दगीका कितना बड़ा हिस्सा बन गया है। क़ुदरती इलाजका मध्य-बिन्दु (मरकज़ी नुक्ता) यानी राम-नाम तो वहमका दुश्मन है। जो बुराई करनेसे झिझकते नहीं, वे राम-नामका नाजायज़ फ़ायदा उठायेंगे। पर वे तो हर चीज़ या हर उसूलके साथ ऐसा ही करेंगे। खाली ज़बानसे राम-नाम रटनेसे इलाजका कोई लेन-देन नहीं। अगर मैं ठीक समझा हूँ, तो, जैसा कि लेखकने बताया है, विश्वास-चिकित्सामें यह माना जाता है कि रोगी अन्ध-विश्वाससे अच्छा हो जाता है। यह मानना तो ज़िन्दा .खुदाके नामकी हँसी उड़ाना है। राम-नाम सिर्फ़ कल्पना (तख़ैयुल)की चीज़ नहीं, उसे तो दिलसे निकलना है। परमात्मामें ज्ञानके साथ विश्वास हो और उसके साथ-साथ .कुदरतके नियमों (क़ानूनों)का पालन किया जाय, तभी किसी दूसरी मददके बिना रोगी बिलकुल अच्छा हो सकता है। उसूल यह है कि शरीरकी सेहत तभी बिलकुल अच्छी हो सकती है, जब मनकी सेहत पूरी-पूरी ठीक हो। और मन पूरा-पूरा ठीक तभी होता है जब दिल पूरा-पूरा ठीक हो। यह वह दिल नहीं, जिसे डॉक्टर टोटियोंसे देखते हैं, बल्कि वह दिल है, जो ईश्वरका घर है। कहा जाता है कि अगर कोई अपने अन्दर परमात्माको पहचान ले, तो एक भी गन्दा या फ़ुजूल खयाल मनमें नहीं आ सकता। जहाँ विचार शुद्ध हों वहाँ बीमारी आ ही नहीं सकती। ऐसी हालतको पहुँचना शायद कठिन हो। पर इस बातको समझ लेना सेहत की पहली सीढ़ी है। दूसरी सीढ़ी है, समझनेके साथ-साथ कोशिश भी करना। जब किसीके जीवनमें यह बुनियादी तबदीली (परिवर्तन) आती है, तो उसके लिए स्वाभाविक (फ़ितरती) हो जाता है कि वह उसके साथ-साथ .क़ुदरतके

* जिस इलाजकी नींव एतक़ाद (विश्वास) पर हो।

१. मद्रास प्रेसीडेन्सी।

www.vinoba.in

उन तमाम क़ानूनोंका पालन भी करे, जो आज तक मनुष्यने ढूँढ़ निकाले हैं। जब तक उनमें बेपरवाही की जाय, तब तक कोई यह नहीं कह सकता कि उसका हृदय पवित्र है। यह कहना ग़लत न होगा कि अगर किसीका हृदय पवित्र है, तो उसकी सेहत राम-नाम न लेते हुए भी उतनी ही अच्छी रह सकती है। बात सिर्फ़ यह है कि सिवा राम-नामके पवित्रता पानेका और कोई तरीक़ा मुझे मालूम नहीं। दुनियामें हर जगह पुराने ऋषि भी इसी रास्ते पर चले हैं। और वे तो ख़ुदाके बन्दे थे, कोई वहमी या ढोंगी आदमी नहीं।

अगर इसीका नाम 'क्रिश्चियन सायन्स' है, तो मुझे कुछ कहना नहीं। मैं यह थोड़े ही कहता हूँ कि राम-नाम मेरी ही शोध (दरियाफ़्त) है। जहाँ तक मैं जानता हूँ, राम-नाम तो ईसाई धर्मसे भी पुराना है।

एक भाई पूछते हैं कि क्या राम-नाममें ज़र्राही (शस्त्र-क्रिया) इलाजकी इजाज़त नहीं? क्यों नहीं? एक टाँग अगर हादसे (दुर्घटना) में कट गई है, तो राम-नाम उसे थोड़े ही वापस ला सकता है। लेकिन बहुत सी हालतोंमें ऑपरेशन ज़रूरी नहीं होता। मगर जहाँ ज़रूरी हो, वहाँ करवा लेना चाहिये। सिर्फ़ इतनी बात है कि अगर ख़ुदाके किसी बन्देका हाथ-पाँव जाता रहा, तो वह इसकी चिन्ता नहीं करेगा। राम-नाम कोई अटकलपच्चू तजवीज़ नहीं है, न ही कोई कामचलाऊ चीज़।

मसूरी, ३०-५-'४६

('हरिजन'से) मोहनदास करमचंद गांधी

इनसानकी सच्ची सेवा

बड़ी-बड़ी सचाइयाँ तमाम दुनियामें एक-सी ही होती हैं। वे किसी एक खानदान या किसी खास मज़हबकी नहीं होतीं। सर फिलिफ सिडनीकी बात तो हमारा हरएक विद्यार्थी (तालिब-इल्म) जानता है। वह लड़ाईके मैदान पर मौतकी राह देखते पड़े थे। मरते वक़्त उन्हें प्यास लगी। ज्यों ही पानीका प्याला मुँहसे लगानेको हुए, पास ही पड़े हुए दूसरे एक सिपाहीने 'पानी, पानी' की पुकार मचाई। अपने मुक़ाबले अपने भाईकी ज़रूरत ज़्यादा है, यह देखकर सर फिलिफ सिडनीने अपना प्याला उसे दे दिया। एक भाई भागवतके नवें स्कन्धकी ऐसी ही एक कहानीकी तरफ़ हमारा ध्यान खींचते हैं। उसमें राजा रन्तिदेवका ज़िक्र है। वे लिखते हैं:

"श्रीमद्भागवत महाकाव्यके नवें स्कन्धमें राजा रन्तिदेवकी जो कहानी कही गई है वह आपको और आपका 'हरिजन' पढ़नेवालोंको दिलचस्प मालूम होगी, क्योंकि अनाजकी हमारी मौजूदा तंगीके ख़यालसे वह बहुत ही नसीहत-आमेज़ है।

वियद्वित्तस्य ददतो लब्धं-लब्धं बुभुक्षतः।
निष्किञ्चनस्य धीरस्य सकुटुम्बस्य सीदतः॥

राजा रन्तिदेव अपने पासका सब कुछ ग़रज़मन्दोंको दे डालता था, और इसकी वजहसे उसके घरके लोगोंको भूखों मरना पड़े, तो उसकी भी वह परवाह नहीं करता था।

व्यतीयुरष्टचत्वारिंशदहान्यपिबतः किल।
घृतपायससंयावं तोयं प्रातरुपस्थितम्॥
कृच्छ्रप्राप्तकुटुम्बस्य क्षुत्तृड्भ्यां जातवेपथोः।
अतिथिर्ब्राह्मणः काले भोक्तुकामस्य चागमत्॥
तस्मै संव्यभजत् सोऽन्नमादृत्य श्रद्धयान्वितः।
हरिं सर्वत्र संपश्यन् स भुक्त्वा प्रययौ द्विजः॥

उसने बिना पानीके ४८ दिन बिताये। एक दिन उसके सामने घी, पायस और पानी रक्खा गया। जिस वक़्त वह खानेकी तैयारी कर रहा था, उसी वक़्त एक भूखा-प्यासा ब्राह्मण उसके पास आ पहुँचा। यह समझकर कि ईश्वर सब किसीमें रहता है, रन्तिदेवने ब्राह्मणको थोड़ा खाना दिया और पानी पिलाया।

अथान्यो भोक्ष्यमाणस्य विभक्तस्य महीपतेः।
विभक्तं व्यभजत् तस्मै वृषलाय हरिं स्मरन्॥

इसके बाद जो कुछ बच रहा था, रन्तिदेव उसे खानेकी तैयारीमें था कि इतनेमें एक शूद्र खाना माँगता हुआ आ पहुँचा; इसलिए उसने बचे हुए में से थोड़ा खाना उसको दे दिया।

याते शूद्रे तमन्योऽगादतिथिः श्वभिरावृतः।
राजन् मे दीयतामन्नं सगणाय बुभुक्षते॥
स आदृत्यावशिष्टं यद्बहुमानपुरस्कृतम्।
तच्च दत्त्वा नमश्चक्रे श्वभ्यः श्वपतये विभुः॥

इसके बाद एक कुत्तोंवाला अतिथि (मेहमान) आ पहुँचा, और खाना माँगता हुआ खड़ा रहा। रन्तिदेवने उसकी माँग पूरी की। उसे और उसके कुत्तोंको खिलाया।

पानीयमात्रमुच्छेषं तच्चैकपरितर्पणम्।
पास्यतः पुल्कसोऽभ्यागादपो देह्यशुभस्य मे॥
न कामयेऽहं गतिमीश्वरात्परामष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा।
आर्त्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजामन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः॥

फिर तो एक आदमीकी प्यास बुझने जितना पानी ही बच रहा। इतनेमें एक चाण्डालने आकर कहा: 'मैं प्यासा हूँ, मुझे पानी दो।' रन्तिदेव बोले: 'मैं मोक्ष या सिद्धि नहीं चाहता। मेरी दिली इच्छा यह है कि मुझे ख़ुद कितनी ही तकलीफ़ क्यों न उठानी पड़े, तो भी मैं दुःखियोंके दुःख दूर करूँ।'

क्षुत्तृट्श्रमो गात्रपरिश्रमश्च दैन्यं क्लमः शोकविषादमोहाः।
सर्वे निवृत्ताः कृपणस्य जन्तोः जिजीविषोः जीवजलार्पणान्मे॥

रन्तिदेवने चाण्डालसे कहा: 'भाई, तुझे पानी न मिला होता, तो तू मौतकी शरण जाता। इसलिए तू बचे और तेरी प्यास बुझे तो मेरी भी बुझी ही है।'

दिल्ली, ११-५-'४६

('हरिजन'से) प्यारेलाल

हफ़्तेवार ख़त

फैलता साया

जब गांधीजी मसूरीके लिए रवाना हुए तो हिन्दुस्तानके बहुतसे शहरों पर मज़हबी फ़सादके बादल ज़्यादा घने हो रहे थे। इस वाहियात दंगा-फ़सादसे उनके मनपर बहुत बोझ पड़ता है। वह जानते हैं कि अक्सर या तो ये फ़साद बेईमान आदमी सीनाज़ोरीसे अपना काम निकालनेके लिए खड़े करते हैं, या जनता बेसमझ प्रोपेगैण्डेसे पागल होकर यह फ़साद बरपा कर देती है; और इसमें मारा जाता है बेचारा आम आदमी, जो इन बेईमान आदमियोंके धोखेमें आ जाता है, और असल लड़ाई करानेवाले सफ़ेदपोशीकी आड़में बचे रहते हैं।

एक अंग्रेज़ लेखक सन् १६७८-८०की 'पोपिश प्लॉट' (साज़िश)की खलबलीवाले ज़मानेका बयान करते हुए लिखता है कि उसके ज़मानेमें सैकड़ों पढ़े रोमन कैथोलिक लोगोंके खिलाफ़ मरते दमतक लड़नेको तैयार थे, लेकिन वे यह नहीं जानते थे कि पोप कौन है — आदमी है या घोड़ा? आजकल जो फ़िरक़ावाराना बलवे होते हैं, उनपर भी यही बात लागू होती है। गांधीजीका जो सन्देश (पैग़ाम) दिल्लीमें आखिरी दिन प्रार्थनाके बाद पढ़ा गया (क्योंकि वह उनका मौन दिन था), उसमें उन्होंने यह सवाल उठाया था कि जो आदमी ईश्वरकी हस्तीको सबसे ज़्यादा मानता है, हमेशा प्रार्थना करता है, राम-नाम रटता है, उसे ऐसे मौक़ोंपर क्या करना चाहिये? जवाब देते हुए उन्होंने लिखा था: "वह फ़सादकी सब जगहों पर नहीं जा सकेगा, लेकिन मनसे, वचन (लफ़्ज़)से और कर्म (फ़ेल)से फ़सादको अनुमोदन (ताईद) न देगा। अपनी नज़रके सामने होता हो, तो उसे रोकेगा। रोकते हुए मरे भी, लेकिन किसीको मारनेकी कोशिश तक न करे। मैंने कल ही कहा था कि शुद्ध (साफ़ और पाक) विचारकी गति (रफ़्तार) वचनसे बहुत ज़्यादा है। क्या आप इसे मानते हैं? और मानते हैं, तो क्या वैसा बरताव करेंगे?"

www.vinoba.in

मसूरी

दिल्लीमें कड़ाकेकी धूप और आँधीने नाकों दम कर रक्खा था। मसूरीमें आकर ठण्डी और चीड़की .खुशबूसे लदी हवायें मिलीं। सड़कों और पगडण्डियों पर सायेदार दरख्त हैं, पहाड़ियों और चट्टानों पर घने जंगल हैं। यह गांधीजीका इस पहाड़ पर तीसरी दफ़ा आना है। आजसे अठारह साल पहले जब गांधीजी यहाँ आये थे, तब पूर्णस्वराज्य (मुकम्मल आज़ादी)का प्रस्ताव (क़रारदाद) लाहौर कांग्रेसमें पास होनेवाला था। आजकल वह बिड़ला हाउसमें ठहरे हुए हैं। उसके अहातेमें हुई पहली प्रार्थनाके बाद उनकी जो तक़रीर (भाषण) हुई थी, उससे उनके मनकी उदासी और वैराग टपकते थे, मानो वे अन्तर्मुख होकर अपनेसे पूछ रहे हों: मसूरी शौक़का घर है, यहाँ तेरा क्या काम है?

गांधीजी प्रार्थनाके बाद

उन्होंने कहा: "आज मसूरी आया हूँ। यह मेरी पहली यात्रा नहीं। पहले भी दो दफ़ा आ चुका हूँ। तब कांग्रेसके कामसे आया था, लेकिन आज सिर्फ़ अपने मतलबके लिए आया हूँ। आपको मालूम है कि आजकल तो मैं कांग्रेसका मेम्बर भी नहीं हूँ। उसका सेवक ज़रूर हूँ। ऐसे सेवक करोड़ों लोग हैं। उनको जनता जानती भी नहीं, और न वे चवन्नी ही देते हैं। सिर्फ़ अपनी शक्तिके मुताबिक़ सेवा करना जानते हैं। न नामकी इच्छा है, न इनामकी आशा। ऐसे लोग फिर कांग्रेसकी सेवा क्यों करते हैं? आज़ादी तो हरएकको चाहिये, लेकिन सब समझते नहीं कि आज़ादी कैसे लेनी है। उन्होंने सुन रक्खा है कि कांग्रेस एक बड़ी जमात है, जो ६० बरससे आज़ादीके लिए, सबकी आज़ादीके लिए, लड़ रही है। इसलिए करोड़ों लोग कांग्रेसके गुण गाते हैं, और जो सेवा उनसे बन पड़ती है, करते हैं। इन करोड़ोंके जैसा ही मैं भी एक सेवक हूँ। यह अलग बात है कि बड़ा हो गया हूँ, नाम मशहूर हो गया है और बहुत जगह घूमा हूँ। मैंने अपने मनकी आजकी हालत आपको बताई है। मैं ऐसा एक सेवक अपने-आपको मानता हूँ।

"यही वजह है कि मैंने यहाँकी कांग्रेसको लिखा तक नहीं, और न ही किसी क़िस्मकी आशा उनसे रखता हूँ। यह अलग बात है कि वे मेरी सेवा कर रहे हैं। लेकिन मैं कोई आशा नहीं करता कि वे मेरा कुछ काम करें; जैसे कि मेरी रक्षा करना। मेरी रक्षा कौन कर सकता है? न कांग्रेस कर सकती है, न खल्लतल, न बिड़ला ब्रदर्स। मेरी रक्षा तो भगवान् ही कर सकता है। आपकी भी रक्षा भगवान् ही करता है। आदमी कहे कि वह किसीकी रक्षा करता है, तो ग़लत होगा। जिसको .खुद यह पता नहीं कि कल ज़िन्दा रहेगा या मर जायगा, वह किसीकी क्या रक्षा कर सकता है? ईश्वर चाहे तो हमारी रक्षा करे, और चाहे तो हमें मार डाले। असलमें वह मारकर भी हमारी रक्षा करता है। हर तरहसे वही रक्षा करनेवाला है, और कोई नहीं।"

मसूरीके अमीर और शौक़ीन लोगोंके मौज-शौक़का हाल उन्होंने पिछली बार भी सुना था। अबकी फिर सुना। हिमालयके दूसरे पहाड़ी मुक़ामोंकी तरह ही मसूरी भी ग़रीबोंके लिए नहीं है। वे बोले: "यहाँ ग़रीब हैं, लेकिन सिर्फ़ आपकी .गुलामी करनेके लिए, आपकी रिक्शा खींचनेके लिए। कोई बीमार हो और रिक्शामें बैठे तो और बात है। पर जब एक भला-चंगा आदमी रिक्शामें बैठता है, तो मुझे बुरा लगता है। आपको भी बुरा लगना चाहिये। हम क्यों किसीको बैल समझकर उसकी पीठपर सवार हों? मैं आपकी शिकायत नहीं करता। सिर्फ़ यह कहता हूँ कि ग़रीबोंके जीवनमें प्रवेश कीजिये, और जानिये कि हिन्दुस्तान क्या है?

"मैं चाहता हूँ कि राम-नाम मुझे पहाड़ों पर आनेसे भी बचाये। करोड़ों यहाँ थोड़े ही आ सकते हैं? वे बीमार भी हों, तो भी उन्हें तो मैदानमें ही जीना या मरना होता है।

"मैं यहाँ मौज-शौक़के लिए नहीं आया, सिर्फ़ शरीरकी मजबूरीसे आया हूँ। अगर आराम कर लिया, तो ज्यादा काम कर सकूँगा। इसमें आप लोगोंका आशीर्वाद चाहता हूँ। आप मुझे आराम लेने दीजिये। कुछ काम तो रहता ही है। बाक़ी एकान्त (तनहाई)में ईश्वरका नाम लेना चाहता हूँ।"

ग़रीबोंके लिए जगह

गांधीजीने मामला यहीं रहने न दिया। दूसरे दिन फिर उसका ज़िक्र करते हुए बोले कि मसूरीमें एक ऐसी जगह होनी चाहिये, जहाँ ग़रीब आ सकें और पहाड़की आबहवाका फ़ायदा उठा सकें: "मैं जान-बूझकर हरिजन बना हूँ। मुझे ऐसी जगह रहना बहुत पसन्द आयेगा, जहाँ हरिजन भी आ सकें और आकर रह सकें। जो जन्मसे हरिजन हैं वह अपने वर्णको छोड़ सकता है, लेकिन जो आप हरिजन बना हो, वह उसे कैसे छोड़ सकता है? मैं तो बग़ैर झिझक सब सवर्णोंको कहता हूँ कि वे अतिशूद्र बन जायँ। तभी ऊँच-नीचका भाव मिट सकेगा। और अगर यह नहीं मिटा, तो हिन्दू धर्मका नाश हो जायगा।" अगर मसूरीमें कोई ऐसी जगह हो, जहाँ हरिजन भी बिना रोक-टोकके आ सकें, तो गांधीजीने कहा कि वे वहाँ रहना पसन्द करेंगे। पंचगनीमें भी उन्होंने यही सुझाया था। वहाँके लोग इस क़िस्मकी जगह बनानेकी सलाह कर रहे हैं। उन्होंने कहा: "आप लोगोंको सुनकर .खुशी होगी कि इसी कामके लिए मसूरीके लोगोंकी भी एक कमेटी बनानेकी बात चल रही है।"

रंगमें भंग

लेकिन इससे भी ज्यादा फ़िक्र गांधीजीको सर पर खड़े कालकी लग रही है। उन्होंने मसूरीके शौक़ीन लोगोंसे कहा कि उनकी ज़ियाफ़त पर मौतका साया मँडरा रहा है। वे उसका ध्यान करें। वे बोले कि सच्ची बात तो यह है कि काल आगे ही मुल्कमें है, करोड़ोंको पूरा खानेको नहीं मिलता। अमीर लोग शायद पैसा दे सकें, लेकिन पैसेसे किसीका पेट थोड़े ही भरता है। जितना अनाज चाहिये उतना मुल्कमें नहीं है। जो है भी, वह भी आसानीसे भूखे इलाक़ोंमें नहीं भेजा जा सकता। गवर्नमेण्टका इन्तज़ाम कितना निकम्मा है! फिर कई ऐसी जगहें हैं, जहाँ .खूराकके ढेर पड़े हैं, पर लोग भूखों मर रहे हैं। क्योंकि हमारे अपने लोग ही बेईमान और लालची हो गये हैं। जो लोग अमीर हैं और किसी-न-किसी तरह अपनी ज़रूरतें हासिल कर लेते हैं, गांधीजीने उनसे अपील की कि वे जितना अनाज बचा सकें, बचायें। "अगर लोग सहयोग करें और काला बाज़ार, रिश्वत और बेईमानी ख़त्म हो जाय, तो शायद इस मुश्किलको पार करनेके लिए मुल्कमें काफ़ी अनाज निकल आये। कुछ लोग हैं, जो इस बातको नहीं मानेंगे। वे कहते हैं कि अगर बाहरसे अनाज न आया, तो हम भूख और मौतसे नहीं बच सकेंगे। मेरी राय इससे अलग है। अव्वल तो मालको हिन्दुस्तान पहुँचनेमें कुछ देर लगेगी और फिर बन्दरगाहसे ज़रूरतकी जगह तक पहुँचानेमें तक़रीबन् ६ हफ़्ते लग जायँगे। इसका इलाज सिर्फ़ एक ही है कि आपसमें सहयोग हो और बेईमानी ख़त्म हो जाय। मसूरीके अमीर लोगों को चाहिये कि जितना अनाज वे भूखोंके लिए बचा सकें, बचायें। अगर सब सिर्फ़ उतना ही खायँ, जितना सेहतके लिए ज़रूरी है, तो मुल्क इन सब मुश्किलोंको पार कर सकेगा।"

मसूरी, १-६-'४६

('हरिजन' से)

प्यारेलाल

नई किताबें	मूल्य	डाकख़र्च
रचनात्मक कार्यक्रम — उसका रहस्य और स्थान (नई और सुधरी हुई आवृत्ति) (गांधीजी)	०-६-०	०-१-०
गो-सेवा — (गांधीजी)	१-८-०	०-५-०
एक धर्मयुद्ध — (महादेवभाई हरिभाई देसाई)	०-८-०	०-२-०
हमारी बा — उनकी जीवन-कस्तूरी (वनमाला परीख और सुशीला नय्यर)	२-०-०	०-६-०
मरुकुंज — क्षयरोगका निवारण (मथुरादास त्रिकमजी)	१-४-०	०-५-०

www.vinoba.in

ज़रूरतसे ज़्यादा तारीफ़

एक फ़ौजी अफ़सर अपने एक दोस्तको लिखते हैं :

". . . कितने अफ़सोसकी बात है कि उन तमाम मुल्कोंमें, जहाँ प्रजा-राज है, राजनीति जाननेवाले फ़ौजके बारेमें इतना कम जानते हैं, और उसमें इतना कम रस लेते हैं! फ़ौजसे वे बहुत-कुछ सीख सकते हैं। उन्हें कम-से-कम यह तो सोचना चाहिये कि दूसरे सरकारी नौकरोंकी बनिस्बत सिपाही क्यों अपनी नौकरीसे इतनी मुहब्बत और नमकहलाली रखता है, हालाँकि फ़ौजमें दूसरी नौकरियोंसे कहीं ज़्यादा तकलीफ़, खतरा और मुसीबत उठानी पड़ती है? आपके पास एक शानदार फ़ौज है, और जब आपके सबसे लायक़ आदमी काफ़ी तादादमें इसके अफ़सर बनेंगे, तो वह और भी शानदार हो जायगी। अगर आप लोग ठीक क़िस्मके अफ़सर ढूँढ़ सके, तो आपको इसके बारेमें किसी क़िस्मकी फ़िक्र करनेकी ज़रूरत नहीं होगी। मुक़ाबलेमें यह फ़ौज किसीसे कम नहीं होगी। पर अगर ग़लत क़िस्मके अफ़सर रख लिये या राजनीतिको इसमें घुसने दिया, तो भारी नुक़सान उठाना पड़ेगा। अभी बहुत बरसों तक हिन्दुस्तानको काफ़ी मुश्किलोंमेंसे गुज़रना है। मुझे यक़ीन है कि आपकी फ़ौज ही इस आड़े वक़्तमें आपके काम आयेगी। .खून भी कम-से-कम बहेगा। पर शर्त यह है कि इसके लिए ठीक क़िस्मके अफ़सर ढूँढे जायँ और सियासी (राजनीतिक) और मज़हबी झगड़े इनसे अलग रक्खे जायँ।"

अगर यह ठीक है कि तमाम प्रजा-राजवाले मुल्कोंमें राजनीतिमें हिस्सा लेनेवाले फ़ौजमें दिलचस्पी नहीं लेते, तो कोई अफ़सोसकी बात नहीं। अफ़सोसकी बात तो यह है कि वे फ़ौजमें ग़लत क़िस्मकी दिलचस्पी लेते हैं। वे समझते हैं कि फ़ौज उन्हें बचाती है, प्रजा-राजको बचाती है, दौलत लाती है, दूसरे मुल्कों पर अपना राज जमाती है, और मुल्कमें फ़सादके वक़्त हुकूमतको अपने सहारे खड़ा रखती है। क्या ही अच्छा हो कि लोक-राज किसी भी चीज़के लिए फ़ौजका सहारा न ले, ताकि वह सच्चा लोक-राज हो सके!

आखिर जिस फ़ौजकी वक़ालत ऊपर की गई है, उसने हिन्दुस्तानके लिए यहाँ क्या किया है? मुझे डर है कि किसी मानीमें भी उसने हिन्दुस्तानको फ़ायदा नहीं पहुँचाया। उसने बेचारे लाखों-करोड़ों निहत्थोंको ग़ुलामीमें रक्खा है। उन्हें कौड़ी-कौड़ीका मुहताज बना दिया है। उसका अंग्रेज़ी हिस्सा जितनी जल्दी यहाँसे वापस भेज दिया जाय और किसी ज़्यादा अच्छे काममें लगा दिया जाय, उतना ही हिन्दुस्तान, इंग्लैण्ड और दुनियाका भला होगा। उसके हिन्दुस्तानी हिस्सेका दिमाग़ भी जितनी जल्दी ढाने-मिटानेके कामसे हटाकर बनानेके काममें लगाया जाय, उतना ही प्रजा-राजके लिए मुफ़ीद होगा। जो लोक-राज फ़ौजके सहारे ही जी सके, वह एक निकम्मी चीज़ है। फ़ौजी ताक़त मनके विकासको यानी नशोनुमाको रोकती है। मनुष्यकी आत्मा घुट जाती है। इस 'क़ाबिल फ़ौज'ने इतने बरसोंसे मुल्कमें विदेशी हुकूमत क़ायम रक्खी है। इसकी मेहरबानीसे आज यह हालत हो गई है कि मिशनकी कोशिशोंके होते हुए भी हिन्दुस्तानको शायद एक छोटी या लम्बी घरेलू लड़ाईमेंसे गुज़रना पड़े; उसका कड़ुआ तजरबा ही शायद हमें हथियारबन्द फ़ौजके मोहसे छुड़ा सके। फ़ौजमें हुक्म या नियमके मुताबिक़ चलनेकी जो ख़ूबी है, वह तो समाजके हर हिस्सेमें होनी चाहिये। इसको निकाल दें, तो फ़ौज आदमीको हैवान बनानेके सिवा और कुछ नहीं सिखाती। अगर आज़ाद हिन्दुस्तानको भी आजके बराबर ही फ़ौजी खर्च उठाना पड़ा, तो भूखों मरनेवाले करोड़ोंको उस आज़ादीसे कोई फ़ायदा न पहुँचेगा।

मसूरी, ३०-५-'४६

('हरिजन'से) मोहनदास करमचंद गांधी

वज़ीरोंकी तनख़्वाहें

थोड़े दिन हुए मैंने 'हरिजन'में दबी क़लमसे एक पैरा मंत्रियोंकी तनख्वाहके बढ़ानेके बारेमें लिखा था, उसकी मुझे काफ़ी क़ीमत अदा करनी पड़ी है। बहुत लम्बे-लम्बे खत पढ़ने पड़ते हैं, जिनमें मेरी एहतियात पर अफ़सोस ज़ाहिर किया जाता है, और मुझे समझाया जाता है कि मैं अपनी राय बदल दूँ। मंत्रियोंकी तनख्वाहें आगे ही बहुत ज़्यादा हैं। इनको और भी बढ़ा देना कहाँ तक ठीक है, जब कि ग़रीब चपरासियों और क्लर्कोंको सिर्फ़ इतनी तरक़्क़ी मिली है कि जिसमें उनका गुज़ारा भी नहीं हो पाता। मैंने अपने नोटको फिर पढ़ा है, और मेरा दावा है कि जो कुछ लेखक चाहते हैं, वह सब उस छोटेसे नोटमें है। पर कोई ग़लतफ़हमी न हो, इसलिए मतलब खोलकर बयान करता हूँ।

मुझे ताना मिला है कि मैंने कराँचीवाले प्रस्ताव (क़रारदाद)का सोचा ही नहीं। वज़ीरोंको जो थोड़ी तनख्वाहें लेनी चाहिये, सो सिर्फ़ इसलिए नहीं कि कांग्रेसने एक प्रस्ताव करके हुक्म दिया है, बल्कि उसके लिए इससे बहुत ऊँचे दरजेके कारण हैं। खैर कुछ भी हो, जहाँ तक मैं जानता हूँ, कांग्रेसने उस प्रस्तावको कभी बदला नहीं, और वह आज भी उतना ही लागू होता है, जितना कि पास होनेके वक़्त होता था।

मैं यह नहीं कहता कि जो तनख्वाहें बढ़ाई गई हैं, वह ठीक हुआ है। लेकिन मैं वज़ीरोंकी बात सुने वग़ैर इसको बुरा-भला नहीं कह सकता। टीका (नुक्ताचीनी) करनेवालोंको यह समझ लेना चाहिये कि मेरा उनपर, या अपने सिवा किसी और पर भी, कोई क़ाबू नहीं। न ही मैं कार्यकारिणी-समिति (वर्किंग कमेटी)के सारे जलसोंमें होता हूँ। जब सदर (सभापति) चाहते हैं तभी जाता हूँ। मैं तो सिर्फ़ अपनी राय दे सकता हूँ, जो कुछ भी उसकी क़ीमत हो। और उसकी क़ीमत तभी हो सकती है, जब सोच-विचार कर, हक़ीक़त पर नींव रखकर राय दी जाय।

अमीर और ग़रीबमें, ऊँची नौकरियों और छोटी नौकरियोंमें भयानक फ़र्क़का सवाल एक अलग विषय (मज़मून) है। इसमें बहुत सोच-विचारकी ज़रूरत है, और तबदीली जड़से करनी पड़ेगी। थोड़े वज़ीरों और उनके सिक्रतरोंकी तनख्वाहोंके सिलसिलेमें लगे हाथ इसका निपटारा नहीं हो सकता। दोनों चीज़ोंका अपने-अपने महत्त्व (अहमियत)के मुताबिक़ फ़ैसला होना चाहिये। वज़ीरोंकी तनख्वाहोंका सवाल तो वज़ीर आप ही हल कर सकते हैं। दूसरा प्रश्न तो इससे बहुत लम्बा-चौड़ा है, और उसमें बहुत बारीकीसे जाँच-पड़ताल करनेकी ज़रूरत होगी। मैं तो यह माननेको हमेशा तैयार हूँ कि वज़ीरोंको फ़ौरन ही अपने-अपने सूबेमें इस कामको अपने हाथमें लेना चाहिये और सबसे पहले नीची नौकरीवालोंकी तनख्वाहों पर सोच-विचार करके, जहाँ ज़रूरी हो, तनख्वाहें बढ़ा दी जानी चाहिये। मसूरी, ३१-५-'४६

('हरिजन'से) मोहनदास करमचंद गांधी

विषय-सूची

			पृष्ठ
आज़ाद हिन्द फ़ौजवालोंकी उलझन	...	प्यारेलाल	१६९
सवालनामा	...	गांधीजी	१७०
आम रिहाइयाँ	...	गांधीजी	१७१
कुछ और सुझाव	...	गांधीजी	१७१
धर्म और अधर्मका विवेक	...	गांधीजी	१७२
खादीके बारेमें संवाद	...	गांधीजी	१७३
विश्वास-चिकित्सा और राम-नाम	...	गांधीजी	१७३
इनसानकी सच्ची सेवा	...	प्यारेलाल	१७४
हफ़्तेवार खत	...	प्यारेलाल	१७४
ज़रूरतसे ज़्यादा तारीफ़	...	गांधीजी	१७६
वज़ीरोंकी तनख्वाहें	...	गांधीजी	१७६
टिप्पणी			
उरुळीकांचन	...	मो० क० गांधी	१७०

www.vinoba.in